ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE
LIS

SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 40, October-December 2020
Page Nos. 38-41

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में महिला लेखन का ऐतिहासिक परिदृश्य

प्रिया सिंह*
डॉ0 देवेन्द्र नाथ सिंह**

शोध सारांश

प्रायः यह माना जाता है कि स्त्री विमर्श एक आयातित विचारधारा है। इग्लैण्ड के जॉन स्टुअर्ड मिल को स्त्रीवादी संघर्ष का पुरोधा माना जाता है, इन्होंने अपनी पुस्तक 'स्त्री की पराधीनता' में नारी को सामाजिक बंधनो से मुक्त होने को प्रेरित किया। किन्तु हम देखते है कि स्त्री विमर्श की परिकल्पना भले ही पश्चिम से प्रभावित है। लेकिन भारत में इसकी अपनी जड़े मौजूद है। स्त्रियों के भीतर पलने वाले मुक्तिकामी स्वप्न एवं संकल्प को हिन्दी में मीराबाई पहले ही अभिव्यक्ति दे चुकी है साहित्य में भी और निजी जीवन में भी। साथ ही एक अज्ञात हिन्दू महिला, दुखिनी बाला, शिवरानी देवी, जैसी स्त्रियों की रचनाएं भी सामने आती है जो न सिर्फ स्त्री–पुरूष समानता की अवधारणा पर बल देती है बल्कि स्त्री की हाशियाकृत स्थिति की ओर संकेत करते हुए उसके कारणों की भी पड़ताल करती है। नारी मुक्ति आन्दोलन की बाइबिल मानी जाने वाली 'द सेकेण्ड सेक्स' जितने दुनियाभर को नारी मुक्ति की प्रेरणा दी, उससे पूर्व ही हिन्दी में नारी चेतना सम्पन्न 'श्रृंखला की कड़िया' प्रकाशित हो चुकी थी।

Keywords : महिला लेखन, मीराबाई, अज्ञात हिन्दू महिला, दुखिनी बाला, शिवरानी देवी

''तुम लोगों पर भी पश्चिम का जादू चल गया और तुम भी हकों के लिए लड़ने को तैयार हो गई। स्त्री का महत्व और बड़प्पन इसी बात में है कि वह माता है और माता का गुण है, त्याग और उत्सर्ग। गर स्त्री उस पद को त्यागकर पुरुषों के बराबर आना चाहती है तो शौक से आवे, लेकिन उसे बहुत जल्द मालूम हो जाएगा कि इन हकों को लेकर उसने मंहगा सौदा किया है।"[1] यहाँ उसी स्त्री विरोधी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था की मानसिकता झलकती है जो स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानकर कभी परम्परा के नाम पर, कभी विवाह संस्था द्वारा तो कभी धर्म के नाम पर उसे शोषित एवं प्रताड़ित करता है। वर्तमान स्त्री विमर्श इसी मानसिकता तथा समाज व्यवस्था का विरोध कर स्त्रियों के लिए समान दर्जे एवं अधिकारों की मांग करता है। कहा जाता है स्त्री पैदा नहीं होता बनाई जाती है, उसे बचपन से ही स्त्री होने के संस्कार दिए जाते हैं। उसकी रक्षा का दायित्व पुरुषों को देकर उसे दूसरे पर आश्रित कर दिया जाता है। स्त्रियों की स्थिति यह है कि वह पुरुषों के लिए मात्र उपभोग की वस्तु है, जिसके सम्बन्ध में सभी निर्णय लेने का हक उसके स्वामी अर्थात् पुरुष को ही है। अपनी इस स्थिति से स्त्रियों ने काफी हद तक समझौता भी कर लिया परन्तु जब दमन हद से अधिक हो तो विद्रोह होना स्वाभाविक है। स्त्री विमर्श इसी विद्रोह को स्वर देता है, इसे पश्चिम से आयातित विचारधारा माना जाता है किन्तु भारत में इसकी अपनी जड़ें मौजूद हैं। स्त्रियों के भीतर पलने वाले मुक्तिकामी स्वप्न और संकल्प को हिन्दी में मीराबाई पहले ही अभिव्यक्ति दे चुकी हैं– साहित्य में भी और निजी जीवन में भी। इनके अतिरिक्त एक अज्ञात हिन्दु महिला, दुःखिनी बाल, शिवरानी देवी जैसी स्त्रीयों ने उत्पीड़न एवं दमन के विरूद्ध आवाज उठायी किन्तु उनके आवाह्न पर अन्तःपुर में कैद स्त्रीयाँ विद्रोह न कर बैठें इस कारण न सिर्फ उनसे उनका नाम छिना गया, उन्हे साहित्यिक परिदृश्य से भी गायब कर दिया गया।

मध्यकाल में नारी की स्थिति धार्मिक सम्प्रदायों में तो बद्तर थी ही, साथ ही सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में भी उसकी दशा वैसी ही रही। नारी को भोग की वस्तु बनाने वाला समाज उसे बंधनों में जकड़ने का अनेक प्रकार से प्रयास करता रहा। घर–परिवार, राजमहल से लेकर मन्दिरों–मठों तक नारी स्वतंत्र नहीं थी। मध्यकाल में मीराबाई अकेली ही ऐसी स्त्री हुई जिसने अद्भुत साहस दिखाकर सामाजिक रूढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया तथा स्वतंत्रता को अपनाया। मीरा को एक भक्त कवियित्री के रूप में जाना जाता है परन्तु मीरा के काव्य के केन्द्र में मीरा के भीतर की वह स्त्री है जो पुरुष दृष्टि की चौकसी और दबाव से मुक्त हो अपने मनोजगत में

*शोध छात्रा (हिन्दी विभाग) डॉ0 शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ
**शोध पर्यवेक्षक – पूर्व प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) डॉ0 शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

दहकती लालसाओं को निर्भीकता से व्यक्त करती है। मीरा इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि कम उम्र में विधवा हुई नारी की स्थिति राजपरिवारों में दासी से भी बद्तर है, इसलिए विवाह के सात–आठ वर्ष बाद ही अपने पति के शव के साथ न तो वह सती हुई और न ही विधवाओं की तरह जीवन व्यतीत करने को तैयार हुई। सती बनना तथा वैधव्य का जीवन न व्यतीत करते हुए उन्होंने मेवाड़ के महाशक्तिशाली राणा की परवाह किए बिना, ईश्वर की भक्ति एवं संतों के सानिध्य को अपना मार्ग चुना। मीरा वैषम्य एवं दमन पर आश्रित विवाह संस्था की जड़ता के कारण आहत है तथा आरोपित विवाह संबंध को अस्वीकार कर स्त्री द्वारा स्वयं पति रूप में पुरुष का वरण करने की स्वतंत्रता की पक्षधर है। यहाँ विवाह व परिवार संस्था के प्रति नकार नहीं है वरन् उसके स्वरूप को बदलने की चाह अवश्य है, जहाँ पति राणा जैसे क्रूर, स्वार्थी पुरुष न हों, बल्कि कृष्ण जैसा संवेदनशील पुरुष हो। किन्तु मीरा का प्रेम समाज को स्वीकृत नहीं है क्योंकि लौकिक प्रिय के अलौकिक स्वरूप को समाज स्वीकृति नहीं देता। स्त्री के प्रेम को समाज में स्वीकृति तभी मिलती है जब वह पति को समर्पित हो, गृहस्थ धर्म का पर्याय बने या ईश्वर को निवेदित होकर अपनी लौकिक व्यंजना में पति में ईश्वरत्व का आरोपण करे। प्रेमोन्मादिनी स्त्री गृहस्थी के लिए पुरुष वर्चस्व एवं सम्बन्धों के विषमतामूलक ढांचे के लिए चुनौती होती है। इसलिए समाज उसकी स्वच्छंदता को लोक, लाज इत्यादि के नाम पर जड़ से उखाड़ फेंकता है। परन्तु मीरा किसी भी प्रकार के बंधनों को अस्वीकार कर देती है–

"लोकलाज कुलकाण जगत की, दी बहाय ज्यूँ पाणी।
अपने घर का पर्दा कर लो, मैं अबला बौराणी।

यहाँ हताशा के गर्भ से फूटता स्त्री का विद्रोह सामने आता है। किसी भी घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री की भाँति मीरा के पास दो रास्ते हैं– या तो वह इसे अपनी नियति समझकर स्वीकार कर ले या उसका विद्रोह कर अपने स्वाभिमान की रक्षा करे। मीराबाई स्त्रियों के प्रति होने वाले अन्याय एवं शोषण को अपनी नियती मानकर उसे स्वीकार नहीं करती वरन् उसके प्रति विद्रोह कर अपने आत्म के लिए संघर्ष करती है।

मीरा एक बेहद स्वाभिमानी स्त्री के रूप में सामने आती है जो किसी भी तरह अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करती तथा इसी रूप में वर्तमान में स्त्रियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है। मीरा ने अपने समय में ही उन आधुनिक सवालों के उत्तर दे दिए जिनसे आज की महिलाएँ जूझती नजर आती हैं। जैसे– कुछ स्त्रियाँ शोषण एवं अत्याचार सहते हुए अपनी आत्मा को मार कर अपना जीवन व्यतीत करती रहती हैं, किन्तु मीरा साफ शब्दों में कहती है– "जो कोउ मोको एक कहोगे, एक की लाख कहोंगी।" जो व्यक्ति संबंधों की गरिमा न रख सके उससे संबंध कैसे रखा जा सकता है तथा जोर–जबरदस्ती या स्वामित्व दिखाकर कोई संबंध नहीं बनाया जा सकता। इस पर मीरा खुलकर चुनौती देती है–

"जो पकड़ोगा हाथ हमारो, खबरदार मन माहीं
सांचा मनसूं सराप ज द्यूली, बलिर भसम होई जाई
जनम–जनम की मैं दासी राम की, धारी नाहिं लुगाई।"

जिस प्रकार आधुनिक नारी भौतिक–सामाजिक संरक्षण से ऊपर उठ कर अपने स्वाभिमान को अधिक महत्व देती है उसी प्रकार आत्माभिमान से दिपदिपाती मीरा महलों की सुख–सुविधा, माणक–मोती का त्याग तो कर ही चुकी थी– "हो जी सीसोद्या राणा, मनड़ों बैरागी धन रो क्या करूँ।" तथा दो मुट्ठी अन्न के लिए भी किसी पर आश्रित नहीं रहना चाहती। मीरा के पदों को यदि आध्यात्मिकता के कुहासे से मुक्त करके देखा जाए तो ज्ञात होता है कि इनका काव्य स्त्री–मानस की पीड़ा को शब्द देने वाला है।

भारतीय नवजागरण के नाम से जाने–जाने वाले इस दौर में महिलाओं की क्या स्थिति रही होगी इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि स्त्रियाँ अपने प्रति होने वाले अत्याचारों का विरोध भी नहीं कर सकतीं और जो करती भी हैं वे भी अपना नाम व पहचान छिपाकर। यह वह दौर है जहाँ एक ओर समाज सुधार के कार्यों को बढ़ावा मिल रहा था दूसरी ओर स्त्रियों की स्थिति जस–की–तस बनी हुई थी। स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार तो दिया गया किन्तु ऐसी शिक्षा जो उसे कुशल गृहिणी बना सके तथा पति की भक्ति करना सिखाए। विधवा विवाह पर कानून तो बना परन्तु उसे समाज द्वारा स्वीकृति नहीं मिली। भारतीय नवजागरण उदार चेहरे का मुखौट लगाकर स्त्री की राहों को कीलने का प्रयास करता रहा। बलिया में दिए गए अपने एक सुप्रसिद्ध व्याख्यान में स्त्रियों की शिक्षा पर भारतेन्दु कहते हैं– "लड़कियों को भी पढ़ाएँ किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं, जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए की वह अपना देश और कुल धर्म सीखें। पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।"[2]

हिन्दी साहित्य में मीराबाई के पश्चात् यदि किसी स्त्री का विद्रोही स्वर सुनाई देता है तो वह है एक अज्ञात हिन्दु महिला। ये विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ खड़ी है तथा स्त्री विरोधी परम्पराओं को समाप्त करना चाहती है। अपने निबंधो के जरिए वे बताती हैं कि भले ही देश में सती प्रथा समाप्त हो चुकी है किन्तु विधवाओं को घरों में तिलतिल जलाने की प्रक्रिया आज भी जारी है। 'रांडों पर सितम' नामक निबंध से पता चलता है कि पंजाब में 'विधवा' को ऐसी–ऐसी यातानएँ दी जाती थीं कि अगर वह मरती नहीं तो जिंदों में भी नहीं रहती। स्त्री के मरने के उपरांत पुरुष दोबारा विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री नहीं इस पर अज्ञात हिन्दु महिला का यह व्यंग्य समाज के लिए मुंहतोड़ जवाब है– "शास्त्रों के अनुसार यदि स्त्री–पुरुष दोनों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई

है तो यह कैसा इन्साफ कि, आधा जिस्म मर्द का औरत के मरने पर दूसरी शादी कर सके और आधा जिस्म औरत का शादी बगैर जेलखाने में मार दिया जावे।"[3] विधवाओं की स्थिति के अलावा अज्ञात हिन्दु महिला विवाह संस्था का पुनरीक्षण एवं पत्नी के रूप में स्त्री–पुरुष समानता की अवधारणा पर भी बल देती हैं। हिन्दु समाज में विवाह संस्था के अमानुषिक स्वरूप को देखते एवं उससे जूझते हुए अज्ञात हिन्दु महिला विधवा पुनर्विवाह की पैरवी करते हुए भी विधवाओं को पुनः विवाह करने की सलाह नहीं देती। इनका मानना है कि शादी करने पर हमें अपने अधिकार दूसरों को देने पड़ते हैं यहाँ तक की अपने शरीर पर भी अपना अधिकार नहीं रहता। औरतों को आजादी किसी हाल में नहीं मिलती क्योंकि बाप, भाई, बेटा तथा रिश्तेदार सभी उस पर हुकुमत करते हैं। मीराबाई के पश्चात् वे हिंदी की दूसरी स्त्री विमर्शकार हैं जो पातिव्रत्य धर्म के पीछे छिपे अंधेरे को साफ–साफ देख पाई हैं। वे ऐसे धर्म को बिल्कुल स्वीकार नहीं करती जहाँ पति की लातें खाकर उन चरणों को पूजना पड़े। वे विधवाओं को चेता देना चाहती हैं कि विवाह करके पहले दूसरों के मजबूर करने पर दुःख झेले, अब उन्हीं दुःखों को जानबूझकर क्यों अपने ऊपर लेना। विवाह संस्था की जकड़न से मुक्ति के साथ अज्ञात हिन्दु महिला रोजमर्रा की जकड़न से भी मुक्ति चाहती है। इस दिशा में वे जेवरों को सुहाग के साथ जोड़ने की कुरीतियों की निरर्थकता से भी रूबरू कराती हैं– सिर में खूंटे के मानिन्द गाड़ा जाने वाला जेवर 'चौक' और उसके साथ एड़ी तक लटकता 'परांदा' सोने में कितनी ही तकलीफ क्यों न हो, पति के जीते जी इस सुहाग–चिह्न को बदन से इलग करना सम्भव नहीं। पांव की उंगली में मांस को गला देने वाला बिछवा, कानों में चलनी की मानिन्द छेद कर पिरोए गए पत्ते, बाली, बुंदे, चांद, मेघ, झुमके, कर्णफूल, ठेंठी, ढेडू, डंडी, तदोड़े, कान कट कर पीप–मवाद की नदियां न बहें तो क्या करें। इस प्रकार उपहास के साथ वे एक–एक जेवर का परिचय देती हैं। स्वयं स्त्री होने के नाते उन्होंने स्त्री जीवन के जिन पहलुओं को बारीकी से देखा तथा व्यक्त किया वे भारतीय नवजागरण के व्यापक ऐजेंडे में कहीं दिखाई नहीं देते।

सीमांतनी उपदेश के कुछ समय पश्चात् प्रकाश में आई दुःखिनी बाला की 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' अपने समय से बहुत आगे की रचना साबित होती है क्योंकि इनमें न तो अज्ञात हिन्दु महिला की तरह पुरुषों के प्रति घृणा है और न ही मीराबाई की तरह विवाह संस्था का विरोध, स्त्री की दयनीय स्थिति के लिए पुरुष तथा धर्मशास्त्रों को दोषी ठहराने के स्थान पर ये पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जाँच लेना चाहती हैं। स्त्री–पुरुष समानता की अवधारणा को प्रतिपादित करते हुए इनकी लड़ाई को बढ़ावा नही देती बल्कि स्त्री की हाशियाकृत स्थिति की ओर संकेत कर देती है। आक्रामकता का अभाव तथा संयम एवं गंभीरता उनकी रचना को अधिक तर्कसंगत बना देती है। किसी लड़ाई में न उलझते हुए वे उन कारणों की पड़ताल करती हैं जिनके कारण स्त्रियों को पुरुषों से हीन समझा जाता है। वे जानना चाहती हैं कि स्त्री–पुरुष की जैविक भिन्नता सृष्टि की निरंतरता के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्वयं प्रकृति द्वारा आरोपित है, फिर हिनता–श्रेष्ठता का प्रश्न क्यों उठता है। इस दिशा में विचार करते हुए अपने ज्ञान के बल पर वे इसके लिए अर्थोपार्जन को उत्तरदायी मानती हैं कि जो अर्थोपार्जन कर अपनी जीविका कमाता है वह श्रेष्ठ माना जाता है। इस प्रकार दुःखिनी बाला स्त्रियों की आर्थिक स्वाधीनता के जरिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था का चेहरा बदलने का सपना देखती है– "यदि वह भी उपार्जन करती होती तो पुरुष के समान बाजार में उसका भी मूल्य होता और.....समान आदर की अधिकारिणी होती।"[4] कभी वे प्रेम को स्त्रियों की हीनता का कारण मानते हुए सोंचती हैं कि पुरुष के प्रेम में पड़कर स्त्रियाँ संसार के कर्मक्षेत्र से अलग हो गईं और प्रेम में मदोन्मत्त हो अपने विशेष कर्त्तव्य को भूल गई तथा गृह की अधिष्ठात्री देवी बनकर पीछे रह गई। यही उसकी हीनता का कारण बना। लेखिका स्त्रियों को हीन समझे जाने वाले कारणों को रेखांकित करती ही हैं साथ ही भाई 'मोहन' के माध्यम से पुरुषों की एकांगी और भ्रमित दृष्टि को तर्कपूर्वक रेखांकित कर एक ऐसे उदार पुरुष की परिकल्पना करती हैं जो उदार एवं संवेदनशील होने के साथ दुनियाभर के ज्ञान को आत्मसात कर स्त्री–पुरुष में असमानता के कारणों को जानना चाहता है।

अंत में दुःखिनी बाला स्त्री के दमन तथा उत्पीड़न के लिए मनुष्य की अहंलिप्सा, सत्ता और प्रभुता को दोषी मानती हैं, जो उससे उसका मनुष्यत्व छीन स्त्रियों के प्रति क्रूर बनाता है। पुरुष समाज यह भली–भाँति जानता है कि विचारशील स्त्रियाँ वर्चस्ववादी इरादों के लिए खतरा पैदा करती हैं इसीलिए स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए कानूनी अधिकार मांगने वाला नवजागरणकालीन समाज स्त्री के स्तरों से इस कदर भयभीत हो गया कि उसके साहित्यिक अवदान के साथ उसका नाम तक छीन लिया गया।

समय के साथ स्त्रियों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं होता, किन्तु उनके शोषण के तरीके अवश्य बदल जाते हैं। जैसा कि हम जानते हैं विद्राहिणी स्त्रियाँ पुरुषों के वर्चस्ववादी इरादों के लिए खतरा पैदा करती हैं, इसलिए उन्हें रोकने के लिए मातृत्व की छवि में बांध दिया जाता है। मातृत्व यानी स्नेह, क्षमा तथा भविष्य के सृजन का गंभीर दायित्व। नारी को स्वस्थ नस्ल की पैदाइश, पालन–पोषण का भार सौंप उसे घर के एक कोने में रखकर उसकी पूजा की जाती है। समाज उसे माँ तथा देवी का दर्जा देकर उसकी पूजा अवश्य करता है किन्तु मनुष्य का दर्जा दे उसे समान अधिकार देने को तैयार नहीं है। जहाँ एक ओर पुरुष रचनाकार स्त्री के माँ, बहन, बेटी के आदर्श स्वरूप को उद्घाटित कर रहे थे वहीं सुभद्राकुमारी चौहान, शिवरानी देवी जैसी स्त्रियाँ

निर्भिकता के साथ स्त्री की जीवंतता की रक्षा में उसके आंसुओं, सपनों एवं अनुभवों को ज्यों का त्यों सामने लाने का साहस कर पाई हैं। शिवरानी देवी को हिन्दी साहित्य में स्थान तो मिला किन्तु वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। उन्हें एक लेखिका के रूप में नहीं वरन् प्रेमचंद जैसे प्रतिष्ठित लेखक की पत्नी के रूप में जाना जाता है। शिवरानी देवी की कहानियों की नायिकाएँ विद्रोहिणी नायिकाएँ हैं जो अपने लिए स्वतंत्रता एवं समान अधिकरों की मांग करती हैं। 'साहस' कहानी में शिवरानी देवी स्त्री मानस पर अंकित उन प्रश्नों को उठाने का साहस करती है जो प्रत्येक स्त्री पूछना चाहती है परन्तु तत्कालीन समाज उसे इसकी आज्ञा नहीं देता। जैसे– विवाह जैसे मामलों में स्त्री की राय तथा स्वीकृति को भी बराबर महत्व देती हैं तथा दहेज का विरोध करने के साथ ही उस पुरुष मानसिकता का विरोध करती है जिसके अनुसार वह विवाह करके कन्या का उद्धार करता है या उन पर कोई एहसान करता है। महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन का प्रश्न भी उठाती है। इसी प्रकार 'समझौता' कहानी में शिवरानी देवी पुरुषों के इस भ्रम को, कि स्त्रियाँ मात्र घर का चूल्हा–चौका कर सकती हैं को तोड़ते हुए आर्थिक स्वाधीनता अर्जित करना चाहती हैं– "नौकरी करना आसान है या मुश्किल, इसके बारे में स्त्रियाँ आप लोगों की राय नहीं पूछने जाती। वे यह जानती हैं कि बिना मुश्किल काम किए उनका यथार्थ आदर नहीं हो सकता। इसलिए अब वह आसान काम छोड़कर मुश्किल काम करेंगी। जब पुरुषों को घर के आसान काम करने का तर्जुबा हो जाएगा, तब उन्हें स्त्रियों की कदर मालूम होगी। अगर पुरुष मुश्किल काम कर सकता है तो स्त्री भी कर सकती है।"

अपने पति का विलोम रचती हुई शिवरानी देवी सम्पत्ति, संतान, धर्म तथा देह पर स्त्री अधिकार की मांग करती हैं। वे स्त्रियों पर होने वाले शोषण के दुष्परिणामों को लेकर करुण रचनाएँ नहीं करती वरन् सक्रियता एवं उद्‌बोधन से भरपूर कहानियों की रचना करती हैं। इसी क्रम में नारी हृदय, समझौता, साहस, आंसू, माता, हत्यारा आदि इनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। शिवरानी देवी की कहानियों में उनके निजी जीवन के अनुभव, टीस व कड़वाहट भी झलकती है। वह अपने पति के झूठ से जितनी आहत है उतनी ही सांत्वना एक स्त्री होने के नाते उनकी पहली पत्नी से रखती है जिसे निर्लज्ज व बदसूरत होने के कारण छोड़ा गया, वे पुरुष की इस रसलोलुप प्रवृत्ति को क्षमा नहीं कर पाती और व्यंग्य करती है– "आप दावे के साथ कह सकते हैं कि आपका चरित्र अच्छा था? खामोश.....मैं बदसूरत होती तो आप मुझे भी छोड़ देते? अगर मेरा बस होता तो मैं सब जगह ढिंढोरा पिटवाती कि कोई भी तुम्हारे साथ शादी न करे।"[5] परन्तु शिवरानी देवी के निजी जीवन के ये अनुभव तथा कड़वाहट पुरुषों के प्रति उनके मन में घृणा का भाव बनकर नहीं रहती वरन् स्त्रीयों के अधिकारों एवं उद्‌बोधन के लिए उन्हें प्रेरित करती है।

शिवरानी देवी के पश्चात् हिन्दी साहित्य में सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा जैसी लेखिकाओं के नाम लिए जाते हैं जिन्होंने स्त्री के लिए आवाज उठाई। इनके पश्चात् तो स्त्री–विमर्श पर लेखिकाओं की एक पूरी फौज खड़ी दिखाई देती है, जिन्हें साहित्य जगत में उपयुक्त स्थान व पहचान भी मिली, किन्तु एक अज्ञात हिन्दु महिला, दुःखिनी बाला तथा शिवरानी देवी कुछ ऐसे नाम हैं जिन्हें साहित्य जगत में वह स्थान व पहचान नहीं मिली जो मिलनी चाहिए थी। वे सारे मुद्‌दे जो वर्तमान स्त्री–विमर्श उठाता, उन्हें बहुत पहले ही ये स्त्रियाँ अपने–अपने तरीके से न सिर्फ सामने लाती हैं वरन् अपने अधिकारों के लिए विद्रोह एवं संघर्ष भी करती हैं। जो लोग स्त्री–विमर्श को पश्चिम से आयातित विचारधारा मानते हैं उन्हें यह भी जानना चाहिए कि बहुत वर्ष पहले मीराबाई न सिर्फ साहित्य में वरन् अपने निजी जीवन में भी स्त्री–मुक्ति के स्वर को अभिव्यक्ति देती हैं। नारी मुक्ति आंदोलन की बाइबिल मानी जाने वादी 'द सेकेंड सेक्स' जिसने दुनियाभर को नारी मुक्ति की प्रेरणा दी, उससे पूर्व ही हिन्दी में नारी चेतना सम्पन्न 'सीमांतनी उपदेश', 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' शृंखला की कड़ियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। समय–समय पर ये स्त्रियाँ भारत में नारी–मुक्ति आंदोलन का मार्ग प्रशस्त करती रही हैं।

सन्दर्भ :–

1. शिवरानी देवी, नारी हृदय, पृ0 151.
2. भारतेन्दु समग्र, पृ0 1013.
3. धर्मवीर (सम्पादक), सीमांतनी उद्‌देश्य, पृ0 76.
4. दुःखिनी बाला, सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी, पृ0 49.
5. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, पृ0 8

❐❐❐